पूज्य वर्णीजी : महत्त्वपूर्ण संस्मरण

पूज्य बाबा भागीरथजीके सम्बन्धमें हमने आप्तजनोंसे सुना था कि वे एक बार अपने भक्तोंके साथ पद-यात्रा कर रहे थे। एक जगह उन्हें पैरके अंगूठेमें पत्थरकी चोट लग गयी और अंगूठेसे खूनकी धारा बह निकली। उन्हें पता भी नहीं, वे बराबर चलते रहे। पीछे चल रहे एक भक्तकी निगाह उनके अंगूठेकी ओर गयी और उसने देखा कि बाबाजीके अँगूठेसे खून बह रहा है। भक्तसे न रहा गया और बाबाजीसे वह बोला—'बाबाजी ! आपके अँगूठेसे खून बह रहा है, रुकिए, उसपर कुछ लगाकर पट्टी बांध दी जाय।' बाबाजी बोले—'पुग्गल-पुग्गल'की लड़ाई हो गयी, हमारा क्या गया।' भक्त बोला—'महाराज ! शरीर धर्मका आद्य साधन है, उसकी रक्षा न की जाय तो धर्मकी साधना कैसे हो सकेगी ?'

बाबाजीने उत्तर दिया कि 'शरीरकी रक्षाके लिए ही तो हम उसे रोज दाना-पानी देते हैं। किन्तु सावधानी रखते हुए भी उसमें असाताके उदयसे यदि विकार आ जाये, तो उसके लिए हमें घबड़ाना नहीं चाहिए।'

भक्त बाबाजीके इस निस्पृहतापूर्ण उत्तरको सुनकर सोचने लगा कि एक हम हैं जो शरीर-मोही हैं और दूसरे बाबाजी हैं, जो उसके मोही नहीं हैं। इसीलिए वे शरीरके एक हिस्सेमें आयी चोटको चोट नहीं समझ रहे, अपितु पुद्गल-पुद्गलकी लड़ाई बता रहे हैं। वास्तवमें ऐसे विवेकी आत्माओंको बहिरात्मा तो नहीं कहा जा सकता। कहते हैं कि बाबाजीने अपना भोजन अन्तमें क्रमशः कम करते-करते एक तोला मूँगकी दालका कर दिया था। पूरी सावधानी और विवेकावस्थामें उन्होंने शरीरका त्याग किया था। धन्य है उन्हें।

पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी (मुनि गणेशकीर्ति महाराज) उन्हीं बाबा भागीरथजीको साथी ही नहीं, अपना गुरु भी मानते थे। समाजमें इन दोनों वर्णियोंके प्रति अपूर्व श्रद्धा एवं निष्ठा थी और दीपचन्दजी वर्णी सहित तीनों '**वर्णीत्रय**'के रूपमें मान्य और पूज्य थे।

पर '**वर्णी**' नाम जितना गणेशप्रसादजीके साथ अभिन्न हो गया था उतना उन दोनों वर्णियोंके साथ नहीं। यही कारण है कि 'वर्णीजी' कहनेपर गणेशप्रसादजीका ही बोध होता है। वास्तवमें 'वर्णीजी' यह उपनाम न रहकर उनका नाम ही हो गया था। यह तभी होता है, जब व्यक्ति अपने असाधारण त्याग, ज्ञान, चारित्र, लोकोपकार आदि लोकातिशायी गुणोंसे असाधारण प्रतिष्ठा और महानता पा लेता है, तब लोग उसके छोटे नामसे ही उसे सम्बोधित करके अपना आदरभाव व्यक्त करते हैं। 'मालवीय' कहनेसे मदनमोहन मालवीयका और 'गाँधीजी' या 'महात्माजी' कहनेपर मोहनदास कर्मचन्द गाँधीका बोध लोग करते हैं। यही बात '**वर्णीजी**' इस नामके सम्बन्धमें है।

वर्णीजी कितने निर्मोही थे, यहाँ हम कुछ घटनाओं द्वारा बताना चाहते हैं।

भयानक कारवंकर फोड़ा

ललितपुर (उत्तर प्रदेश) के क्षेत्रपालकी बात है। वहाँ उनका चातुर्मास हो रहा था। उनके दायें पैरकी जंघामें उन्हें एक भयानक कारवंकर फोड़ा हो गया था। बहुत देशी उपचार हुए, पर कोई लाभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हुआ। यह समाचार दिल्ली पहुँचा। वहाँसे ला० राजकृष्णजी, हम आदि कई लोग ललितपुर आये। वर्णीजीके दर्शन किये। उनके उस भयानक फोड़ेको भी देखा। किन्तु वर्णीजीके चेहरेपर जरा भी सिकुड़न न थी और न उनके चेहरेसे उसकी पीड़ा ही ज्ञात होती थी। ला० राजकृष्णजी एक सर्जन डाक्टरको शहरसे ले आये। डाक्टरने फोड़ाको देखा और कहा कि इसका आपरेशन होगा, अन्य कोई चारा नहीं है। वर्णीजीने कहा, तो कर दीजिए। डा० बोला 'आपरेशनके लिए अस्पताल चलना होगा।' वर्णीजीने दृढ़तापूर्वक कहा कि हम 'अस्पताल तो नहीं जायेंगे, यहीं कर सकते हों तो कर दीजिए, अन्यथा छोड़ दीजिए।' ला० राजकृष्णजीने डॉक्टरसे कहा कि ये त्यागी महात्मा हैं, अस्पताल नहीं जायेंगे, ऑपरेशनका सब सामान हम यहीं ले आते हैं। डॉक्टर वहीं (क्षेत्रपालमें) ऑपरेशन करनेको तैयार हो गया। जब डॉक्टरने पुनः बर्णीजीसे बेहोश करनेकी बात कही तो वर्णीजीने कहा कि 'बेहोश करनेकी आवश्यकता नहीं' और अपना पैर आगे बढ़ा दिया। पौन घंटेमें ऑपरेशन हुआ। पर वर्णीजीके चेहरेपर कोई सिकुड़न या पीड़ाका आभास नहीं हुआ। रोजमर्राकी भाँति हम लोगोंसे चर्चा-वार्ता करते रहे। यह थी उनकी शरीरके प्रति निर्मोह वृत्ति और जागृत विवेक। हम लोग यह देखकर दंग रह गये।

१०५ डिग्री बुखार

दूसरी घटना इटावाकी है। वर्णीजीका यहाँ भी एक चातुर्मास था। यहाँ उन्हें मलेरिया हो गया और १०४, १०५ डिग्री तक बुखार रहने लगा। पैरोंमें शोथ भी हो गया। उनकी इस चिन्ताजनक अस्वस्थताका समाचार ज्ञात होनेपर दिल्लीसे ला० राजकृष्णजी, ला० फीरोजीलालजी, ला० हरिश्चन्द्रजी, हम आदि इटावा पहुंचे।

जिस गाड़ीसे गये थे, वह गाड़ी इटावा रातमें ३–३॥ बजे पहुँचती है। स्टेशनसे ताँगा करके गाड़ीपुराकी जैनधर्मशालामें पहुँचे, जहाँ वर्णीजी ठहरे हुए थे। सब ओर अँधेरा और सभी सोये हुए थे। एक कमरेसे रोशनी आ रही थी। हम उसी ओर बढ़े और जाकर देखा कि वर्णीजी समयसारके स्वाध्यायमें लीन हैं। सबको वहीं बुला लिया। ला० फीरोजीलालजीने थर्मामीटर लगाकर वर्णीजीका तापमान लिया। तापमान १०५ डिग्री था और रातके ३॥ बजे थे। उनकी इस अद्भुत शरीर-निर्मोह वृत्तिको देखकर हम सभी चकित हो गये और चिन्ताकी लहरमें डूब गये। पैरोंकी सूजन तो एकदम चिन्ताजनक थी। किन्तु वर्णीजीपर कोई असर नहीं दिखा।

अन्तिम समयकी असह्य पीड़ा

तीसरी घटना उनके अन्त समयकी ईसरीकी है। वे अन्तिम दिनोंमें काफी अशक्त हो गये थे। उन्हें उठने, बैठने और करवट बदलनेमें सहायता करनेके लिए एक महावीर नामका कुशल परिचारक था। अन्य कितने ही भक्त उनके निकट हर समय रहते थे। किन्तु महावीर बड़ी कुशलता एवं सावधानीसे उनकी परिचर्या करता था। इस अशक्त अवस्थामें भी वर्णीजीकी किसी चेष्टासे उनकी पीड़ाका आभास नहीं होता था। मुँहसे कभी ओफ तक नहीं निकलती थी। उस असह्य पीड़ाको वे अद्भुत सहनशीलतासे सहते थे, वे वेदनासे विचलित नहीं हुए। ऐसी थी उनकी शरीरके प्रति विवेकपूर्ण निर्मोह वृत्ति, जो उनके अन्तरात्मा होनेकी सूचक थी, बहिरात्मा तो वे जीवनमें प्रायः कभी नहीं रहे होंगे। प्राथमिक १८ वर्षोंसे वे यद्यपि वैष्णवमतमें रहे, किन्तु उनके मनमें अन्तर्द्वन्द्व और वैराग्य एवं विवेक तब भी रहा। इसीसे वे पत्नी, माता आदिके मोहको छोड़ सके थे और अत्यन्त ज्ञानवती, धर्मवत्सला, धर्ममाता चिरोंजाबाईके अनायास सम्पर्कमें आ गये थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तीन घटनाओंसे स्पष्टतया उनकी निर्मोहवृत्तिका परिचय मिलता है।

वे परमोही भी न थे। उनके दर्शनों एवं उपदेश सुननेके लिए रोज परिचित-अपरिचित सैकड़ों व्यक्ति आते-जाते रहते थे और वे अनुभव करते थे कि वर्णीजीकी हमपर कृपा है और हमसे स्नेह करते हैं। पर वास्तवमें उनका न किसी भी व्यक्तिके प्रति राग था और न किसी संस्था या स्थान विशेषसे अनुराग था।

कभी कुछ लोग उनके सामने किसीकी आलोचना भी करने लगते थे, पर वर्णीजी एकदम मौन-तटस्थ। कभी भी वे ऐसी चर्चामें रस नहीं लेते थे। हरिजन-मन्दिर-प्रवेशपर अपना मत प्रकट करनेपर आवाज आयी कि वर्णीजीकी पीछी-कमण्डलु छीन ली जाय। इसपर उनका सहज उत्तर था कि 'छीन लो पीछी-कमण्डलु, हमारा आत्म-धर्म तो कोई नहीं छीन सकता।' ऐसी उनमें अपार सहनशीलता थी।

उनके निकट कोई सहायतायोग्य श्रावक, छात्र या विद्वान् पहुँच जाये, तो तुरन्त उसकी सहायताके लिए उनका हृदय उमड़ पड़ता था और उनका संकेत मिलते ही उनके भक्तगण उसकी पूर्ति कर देते थे—उनके लिए उनकी थैलियाँ खुली रहती थीं। वस्तुतः वे एक महान् सन्त थे, महात्मा थे और महात्माके सभी गुण उनमें थे।

लोकापवादपर विजय

भारविने कहा है कि '**विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।**'—विकारका निमित्त मिलनेपर भी जिनका चित्त विकृत (विकार युक्त) नहीं होता वे ही धीर पुरुष हैं। सेठ सुदर्शन, सती सीता जैसे अनेक पावन मनुष्योंके लिए कितने विकारके निमित्त मिले, पर वे अडिग रहे—उनके मन विकृत नहीं हुए, गांधीजीको क्या कम विकारके निमित्त मिले? किन्तु वे भी अविकृत रहे और लोकमें अभिवन्दनीय सिद्ध हुए।

बहुत वर्ष बीत गये। वर्णीजी तब समाज-सेवाके क्षेत्रमें आये ही थे। उन्होंने समय-सुधारका बीड़ा उठाया। विवाहोंमें बारातों और फैनारोंमें औरतोंके जानेकी प्रथा थी। यह प्रथा फिजूलखर्ची और अपव्ययकी जनक तो थी ही, परेशानी भी बहुत होती थी। वर्णीजीने इस प्रथाको बन्द करनेके लिए समाजको प्रेरित किया। किन्तु जब उसका कोई असर नहीं हुआ, तो वे स्वयं आगे आये। वे चाहते थे कि बारातमें तथा फैनारोंमें औरतें न जायें, क्योंकि पुरुषोंके लिए काफी परेशानियाँ उठाना पड़ती हैं तथा उनकी सुरक्षाका विशेष खयाल रखना पड़ता है। अतः उनका जाना बन्द किया जाय। परन्तु औरतें यह कब मानने वाली थीं। नीमटोरिया (ललितपुर, उत्तर प्रदेश) में एक बारात गयी। उसमें औरतें भी गयीं। वर्णीजीको जब पता चला तो वे वहाँ पहुँचे और सभी औरतोंको वापिस करा दिया। औरतोंपर उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने विवेक खोकर वर्णीजीको अनेक प्रकारकी गालियाँ दीं, बुरा-भला कहा और खूब कोसा। किन्तु वर्णीजीपर उनकी गालियोंका कोई असर नहीं हुआ। उनके मनमें जरा भी रोष या क्रोध नहीं आया। फलतः धीरे-धीरे उक्त प्रथा बन्द हो गयी। अब तो सारे बुन्देलखण्डमें बारातमें औरतोंका जाना प्रायः बन्द ही हो गया है। यह थी वर्णीजीकी सहिष्णुता और संकल्प शक्तिकी दृढ़ता।

दिल्लीमें चातुर्मास हो रहा था। उसी समयकी बात है। कुछ गुमराह भाइयोंने वर्णीजीके विरोधमें एक परचा निकाला और उसमें उन्हें पूंजीपतियोंका समर्थक बतलाया। जब यह चर्चा उन तक पहुँची, तो वे हंसकर बोले—'भइया! मैं तो त्यागी हूँ और त्यागका ही उपदेश देता हूँ तथा सभीसे—पूंजीपतियों और अपूंजीपतियोंसे त्याग कराता हूँ और त्यागी बनाना चाहता हूं। इसमें कौन-सी बुराई है।' वर्णीजीका यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर कितना सात्त्विक, मधुर और सहिष्णुताका द्योतक था। वर्णीजी सबके थे, गरीबके भी, अमीरके भी, विद्वान्‌के भी, अनपढ़के भी, और वृद्ध तथा बच्चोंके भी। उनका वात्सल्य सभी पर था। गांधीजीके लिए विड़ला जैसे कुबेर स्नेहपात्र थे तो उससे कम उनका स्नेह गरीबों या हरिजनोंसे न था। वे उनके लिए ही जिए और मरे। वर्णीजी जैन समाजके गांधी थे। उनकी रग-रग में सबके प्रति समान स्नेह और वात्सल्य था।

हमें बुन्देलखण्डका स्वयं अनुभव है। वह एक प्रकारसे गरीब प्रदेश है। वहाँ वर्णीजीने जितना हित और सेवा गरीबोंकी की है, उतनी अन्यकी नहीं। विद्यार्थी हो, विद्वान् हो। उद्योगहीन हो और चाहे कोई गरीबनी विधवा हो उन सबपर उनकी कातर दृष्टि रहती थी। वे इन सभीके मसीहा थे।

सत्यानुसरण

वर्णीजी वैष्णव कुलमें उत्पन्न हुए। किन्तु उन्होंने अमूढ दृष्टि एवं परीक्षाबुद्धिसे जैनधर्मको आत्म-धर्म मानकर उसे अपनाया। उनका विवेक और श्रद्धा कितनी दृढ़ एवं जागृत रही, यह बात निम्न घटनासे स्पष्ट मालूम हो जाती है। वर्णीजी जब सहारनपुर पहुंचे और वहाँ आयोजित विशाल सार्वजनिक सभामें उपदेशके समय एक अजैन भाईने उनसे प्रश्न किया कि 'आपने हिन्दू धर्म छोड़कर जो जैनधर्म ग्रहण किया तो क्या वे विशेषताएँ आपको हिन्दूधर्ममें नहीं मिलीं?' इसका उत्तर वर्णीजीने बड़े सन्तुलित शब्दोंमें देते हुए कहा कि 'जितना सूक्ष्म और विशद विचार तथा आचार हमें जैन धर्ममें मिला है उतना षड्दर्शनोंमें किसीमें भी नहीं मिला। यदि हो तो बतलायें, मैं आज ही उस धर्मको स्वीकार कर लूं। मैंने सब दर्शनोंके आचार-विचारोंको गहराईसे देखा और जाना है। मुझे तो एक भी दर्शनमें जैनधर्ममें वर्णित अहिंसा और अपरिग्रह-का अद्वितीय एवं सूक्ष्म आचार-विचार नहीं मिला। इसीसे मैंने जैनधर्म स्वीकार किया है। यदि सारी दुनिया जैनधर्म स्वीकार कर ले तो एक भी लड़ाई-झगड़ा न हो। जितने भी लड़ाई-झगड़े होते हैं वे हिंसा और परिग्रहको लेकर ही होते हैं। संसारमें सुख-शान्ति तभी हो सकती है जब अहिंसा और अपरिग्रहका आचार-विचार सर्वत्र हो जाय।' यह है वर्णीजीका विवेक और श्रद्धापूर्वक किया गया सत्यानुसरण। आचार्य अकलङ्कदेवने परीक्षक होने के लिए दो गुण आवश्यक माने हैं—१ श्रद्धा और २ गुणज्ञता (विवेक)। इनमेंसे एकका भी अभाव हो, तो परीक्षक नहीं हो सकता। पूज्य वर्णीजीमें हम दोनों गुण देखते हैं, और इस लिए उन्हें सत्यानुयायी पाते हैं।

अपार करुणा

वर्णीजी कितने कारुणिक और परदुःखकातर थे, यह उनकी जीवन-व्यापी अनेक घटनाओंसे प्रकट है। उनकी करुणाकी न सीमा थी और न अन्त था। जो अहिंसक और सन्मार्गगामी थे उनपर तो उनका वात्सल्य रहता ही था, किन्तु जो अहिंसक और सन्मार्गगामी नहीं थे—हिंसक एवं कुमार्गगामी थे, उन पर भी उनकी करुणाका प्रवाह बहा करता था। वे किसी भी व्यक्तिको दुःखी देखकर दुःखकातर हो जाते थे। गत विश्वयुद्धोंकी विनाशलीलाकी खबरें सुनकर उन्हें मर्मान्तिक दुःख होता था। सन् १९४५ में जब आजाद हिन्द फौजके सैनिकोंके विरुद्ध राजद्रोहका अभियोग लगाया गया और उन्हें फाँसीके तख्ते पर चढ़ाया जाने वाला था, उस समय सारे देशमें अंग्रेज सरकारके इस कार्यका विरोध हो रहा था और उनकी रक्षाके लिए धन इकट्ठा किया जा रहा था। उस समय वर्णीजी जबलपुरमें थे। एक सार्वजनिक सभामें, जो धन एकत्रित करनेके लिए की गयी थी, वर्णीजी भी उपस्थित थे। उनका हृदय करुणासे द्रवित हो गया और बोले—"जिनकी रक्षाके लिए ४० करोड़ मानव प्रयत्नशील हैं उन्हें कोई शक्ति फाँसीके तख्तेपर नहीं चढ़ा सकती। आप विश्वास रखिए, मेरा अन्तःकरण कहता है कि आजाद हिन्द फौजके सैनिकोंका बाल भी बांका नहीं हो सकता है।" इतना कहा और अपनी चद्दर (ओढ़नेकी) उनकी सहायताके लिए दे डाली। उसे नीलाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने पर एक उनके भक्तने २९००) में ले ली। इसका उपस्थित जनता और अध्यक्ष मध्यप्रदेशके तत्कालीन गृहमंत्री पं० द्वारकाप्रसाद मिश्रपर बड़ा प्रभाव पड़ा। वर्णीजीकी करुणाके ऐसे-ऐसे अनेक उदाहरण हैं।

जगत्कल्याणकी सतत भावना

वर्णीजीमें जो सबसे बड़ी विशेषता थी वह है जगत्के कल्याणकी सतत भावना। विहारसे मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और दिल्लीकी पदयात्रामें उन्होंने लाखों लोगोंको शराब न पीने, मांस न खाने और हिंसा न करनेका मर्मस्पर्शी उपदेश दिया और उन्होंने उनके इस उपदेशको श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया। उनकी इस पद-यात्रामें लोगोंने उन्हें बड़ा आदर दिया और उनके प्रति अपूर्व श्रद्धा व्यक्त की। अनेक जगह उनका श्रद्धापूर्वक उन्होंने आतिथ्य किया। आजके विश्वको त्रस्त देखकर वे हमेशा कहते थे कि 'एक हवाई जहाज लो और साथमें १०।१५ मर्मज्ञ विद्वानोंको लो और यूरोपमें जाकर अहिंसा और अपरिग्रह धर्मका प्रचार करो। साथमें हम भी चलनेको तैयार हैं। जहाँ शराब और मांसकी दुकानें हैं और नाचघर बने हुए हैं वहाँ जाकर सदाचार और अहिंसाका उपदेश करो। आज लोगोंका कितना भारी पतन हो रहा है। देशके लाखों मानवोंका चरित्र इन सिनेमाघरोंसे बिगड़ रहा है, उन्हें बन्द कराओ और भारतीय पुरातन महापुरुषोंके सदाचारपूर्ण चरित्र दिखाओ।' यह थी वर्णीजीकी विश्वकल्याणकी भावना।

पूज्य वर्णीजीमें ऐसे-ऐसे अनेकों गुण थे, जिनका यहाँ उल्लेख करना शक्य नहीं। वास्तवमें उनका जीवन-चरित्र महापुरुषका जीवन-चरित्र है। इसी लिए उन्हें करोड़ों नर-नारी श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं। उनके गुण हम जैसे पामरोंको भी प्राप्त हों, यह भावना करते हुए उन्हें मस्तक झुकाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org